इकाई 2 भारतीय इतिहास में क्षेत्र: गठन एवं विशेषताएं

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप समझ सकेंगे कि:

- भारतीय इतिहास के विभिन्न चरणों को समझने के लिए (भारतीय) भौगोलिक क्षेत्रों की जानकारी क्यों आवश्यक है,
- इन क्षेत्रों का उदय कैसे हुआ, तथा
- एक क्षेत्र दूसरे क्षेत्र से किस रूप में भिन्न था।

2.1 प्रस्तावना

इकाई 1 में हमने देखा कि भारतीय उपमहाद्वीप कई क्षेत्रों से मिलकर बना है और प्रत्येक क्षेत्र की अपनी विशेषताएं हैं देश के ऐतिहासिक उद्भव की प्रक्रिया में क्षेत्रों ने विशेष सांस्कृतिक विशिष्टताएं ग्रहण की तथा कई आधारों पर जैसे समान ऐतिहासिक परंपरा, भाषा, सामाजिक संगठन, कलाएं आदि, हम एक क्षेत्र से दूसरे की भिन्नताओं को इंगित कर सकते हैं। इस प्रकार भारतीय इतिहास में समान सामाजिक तथा सांस्कृतिक रीतियों एवं संस्थाओं तथा साथ ही क्षेत्रीय विशिष्टताओं की संरचना के स्थायित्व की दोहरी प्रक्रिया देखने को मिलती है।

यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि इतिहास में क्षेत्रों के उदय की प्रक्रिया का स्वरूप असमान रहा है। अत: वर्तमान की भांति भूत में भी विभिन्न क्षेत्रों में ऐतिहासिक परिवर्तन की प्रक्रिया में काफी असमानताएं रही हैं यद्यपि कोई भी क्षेत्र कभी भी पूरी तरह से कटा हुआ नहीं रहा है। इस इकाई में भारतीय इतिहास में क्षेत्रों के गठन की प्रक्रिया तथा क्षेत्रीय विभिन्नताओं पर प्रकाश डाला जाएगा। स्थान एवं काल के आधार पर भारतीय समाज के उद्भव के विभिन्न

चरणों में भिन्नता को समझने के लिए भारतीय उप महाद्वीप का गठन करने वाले क्षेत्रों के स्वरूप की जानकारी अत्यावश्यक है।

2.2 क्षेत्रीय परिवर्तन के कारण

क्षेत्रों तथा क्षेत्रीय संस्कृतियों के बीच विभिन्नताओं के चिह्न संभवत: खाद्य उत्पादन के रूप में जीवन यापन के नए साधन की शुरुआत के साथ ढूंढे जा सकते हैं। उपमहाद्वीप की मुख्य नदियों के क्षेत्रों में कृषि आधारित अर्थव्यवस्था की शुरुआत मात्र एक घटना नहीं बल्कि एक प्रक्रिया थी जो कई सहस्त्राब्दियों में फैली हुई थी। कच्ची मैदान (जो कि अब पाकिस्तान में है) के अंतर्गत मेहर गढ़ में कृषिगत गतिविधियां अपेक्षाकृत जल्दी लगभग 6000 ईसा पूर्व से पहले ही आरंभ हो गयीं थी तथा सिंधु घाटी में चौथी-तीसरी सहस्त्राब्दि ईसा पूर्व में, गंगा की घाटी में कोलडिहवा (उत्तर प्रदेश) में 5000 ईसा पूर्व में, चिरंद (बिहार) में तीसरी सहस्त्राब्दि ईसा पूर्व के उत्तरार्ध तथा अतरंजी खेडा (दोआब) में दूसरी सहस्त्राब्दि ईसा पूर्व के पूर्वार्ध में कृषि की शुरुआत हुई तथापि गंगा घाटी में पूर्ण रूप में नियोजित कृषि, खेतीहर गांव तथा अन्य सम्बद्ध लक्षण जैसे नगर का उदय, व्यापार तथा राज्य प्रणाली आदि प्रथम सहस्त्राब्दि ईसा पूर्व के मध्य में ही दिखायी देते हैं। मध्य एवं प्रायद्वीपीय भारत में ऐसे कई स्थान थे जहां बदलाव की यह प्रक्रिया प्रथम सहस्त्राब्दि ईसा पूर्व की अंतिम शताब्दि में ही आरंभ हो सकी। इसी प्रकार गंगा, गोदावरी, कृष्णा तथा कावेरी के क्षेत्रों में कृषक समुदाय तेज़ी से फैलता रहा और सभ्यता के चरणों की विभिन्न प्रक्रियाओं को तेज़ी से तय करता रहा। जबकि असम, बंगाल, गुजरात, उड़ीसा तथा मध्य भारत के काफी क्षेत्र जो कि बाकी क्षेत्रों से अपेक्षाकृत अथवा पूर्णतया कटे हुए थे। काफी लम्बे समय तक इन विकासों से अछूते रहे तथा आदिम अर्थव्यवस्था के चरण से आगे नहीं बढ़ पाए थे। अंतत: जब कुछ अपेक्षाकृत कटे हुए क्षेत्रों में बदलाव की प्रक्रिया का ऐतिहासिक दौर शुरू हुआ तो अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा इन विकासों के बीच न केवल समय का लंबा अंतराल था बल्कि क्षेत्रों के गठन के स्वरूप में भी स्पष्ट अन्तर था। पूर्व विकसित क्षेत्रों के मुख्य केन्द्रों का सांस्कृतिक प्रभाव इन कटे हुए क्षेत्रों के विकास की प्रक्रिया पर आरंभ से ही पड़ा। अत: आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि कुछ क्षेत्र अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक तेज़ी से विकसित हुए तथा अभी भी कुछ क्षेत्र हैं जो अन्य की अपेक्षा पिछड़े हुए हैं।

2.2.1 ऐतिहासिक क्षेत्रों के उदय की असमान प्रक्रियाएं

जैसा कि हमने इकाई 1 में देखा, अनेक क्षेत्रों में सांस्कृतिक विकास की असमान प्रक्रिया तथा ऐतिहासिक शक्तियों का असमान विन्यास भूगोल से अत्यधिक प्रभावित रहा। क्षेत्रों के असमान्य विकास को ऐतिहासिक स्थितियों द्वारा दर्शाया जा सकता है। उदाहरण के लिए, तीसरी सहस्त्राब्दि ईसा पूर्व के उत्तरार्ध में गुजरात में मध्य पाषाण युगीन संस्कृति मौजूद थी जबकि इसी समय दकनी क्षेत्रों में नवपाषाण युगीन पशु पालक काफी संख्या में मौजूद थे। ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि अन्य क्षेत्रों के इन संस्कृतियों के युग में ही हड़प्पा जैसी विकसित सभ्यता विद्यमान थी। फलत: विकास के विभिन्न चरणों में क्षेत्रों एवं संस्कृतियों के एक दूसरे से प्रभावित होने के प्रमाण मिलते हैं। यह प्रक्रिया भारतीय इतिहास के हर दौर में दिखायी देती है। दूसरे शब्दों में, जहां एक ओर सिंधु एवं सरस्वती के क्षेत्रों में घुमक्कड़ लोग तीसरी सहस्त्राब्दि ईसा पूर्व में बसने लगे थे वही दूसरी ओर दकन, आंध्र, तमिलनाडु, उड़ीसा एवं गुजरात में बड़े पैमाने पर खेतिहार समुदाय बुनियादी रूप में लौह-युग में गठित हुए जो कि प्रथम सहस्त्राब्दि ईसा पूर्व का उत्तरार्ध अनुमानित किया जा सकता है।

लोहे के प्रादुर्भाव के साथ ही स्थायी कृषिगत् गतिविधि पर आधारित भौतिक संस्कृति का प्रसार आरंभ हुआ। तीसरी सहस्त्राब्दि ईसा पूर्व के आरंभ से गांगेय उत्तरी भारत तथा मध्य भारत के सीमावर्ती क्षेत्रों की भौतिक संस्कृति में काफी कुछ समानता दिखायी देती है। यद्यपि अशोक के शिला लेखों के भौगोलिक वितरण (जो कि उत्तर से दक्षिण तक मिलते हैं) के कारण पूरे उपमहाद्वीप में कुछ हद तक सांस्कृतिक समानता स्वीकार की जाती है, विंध्याचल के दक्षिण के क्षेत्रों में जटिल सामाजिक संरचना वाले आरंभिक ऐतिहासिक, साक्षर युग के उदय की प्रक्रिया मौर्य युग में तथा उसके उपरांत तेज़ हुई।

वास्तव में उत्तर मौर्य युग, 200-ईसा पूर्व 300-ईसवी दक्षिण भारत तथा दक्कन के अधिकतर क्षेत्रों की संस्कृति के विकास का आरंभिक चरण था। इन क्षेत्रों की ऐतिहासिक बस्तियों की खुदाई से प्राप्त पुरातात्विक आंकड़ों से इस तर्क को बल मिलता है। यहां यह बताना आवश्यक है कि बीच के काफी क्षेत्र अथवा मध्य भारत की जंगली पहाड़ियां कभी भी पूरी तरह नहीं बसीं और आदिम युगीन अर्थव्यवस्था के विभिन्न चरणों में आदिवासियों को शेष मानव समाज से अलग रहने का अवसर देती रहीं। इस उपमहाद्वीप में सभ्यता तथा पारंपरिक सामाजिक संगठन के रूप में अधिक जटिल संस्कृति विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न कालों में पहुंची तथा अपेक्षाकृत अधिक विकसित भौतिक संस्कृति का क्षेत्रीय प्रसार काफी असमान रहा।

2.2.2 मृत्कला प्रमाण

अपने अनश्वर गुण के कारण मृत्भाण्ड किसी संस्कृति की पहचान का विश्वस्नीय चिह्न होते हैं तथा पुरातत्वात्मक श्रेणीबद्धता का महत्वपूर्ण साधन होते हैं। विभिन्न संस्कृतियां अपने विशिष्ट मृत्भाण्ड के आधार पर पहचानी जाती हैं। गेरू चित्रित मृत्भाण्ड जो कि 1000 ईसा पूर्व से पहले के हैं, चित्रित भूरे मृत्भाण्ड जो 800–400 ईसा पूर्व के बीच के हैं, काले एवं लाल मृत्भाण्ड जो उपरोक्त दोनों के बीच के काल के हैं, तथा उत्तरी काले पालिश वाले मृत्भाण्ड जो कि 500–100 ईसा पूर्व के हैं। मृत्भाण्ड की प्रथम तीन श्रेणियां मुख्यत: भारत-गांगेय विभाजन तथा दोआब सहित ऊपरी गंगा घाटी में मिलते हैं। काली पालिश वाले मृत्भाण्ड उत्तरी मैदान से आरंभ होकर मौर्य काल के दौरान मध्य भारत तथा दक्कन तक फैल गए।

विभिन्न प्रकार के मृत्भाण्डों के वितरण से हमें संस्कृतियों की सीमाओं तथा उनके विस्तार के चरण के विषय में जानकारी प्राप्त होती है: भारत-गांगेय विभाजन तथा ऊपरी गंगा क्षेत्र में एक नई संस्कृति का उदय सर्वप्रथम दूसरी सहस्त्राब्दि ईसा पूर्व के उत्तरार्ध में हुआ जो कि धीरे-धीरे पूर्व की ओर फैली जो मौर्य काल में संभवत: मुख्य गांगेय क्षेत्र से भी आगे बढ़ गई।

2.2.3 साहित्यिक प्रमाण

प्राचीन भारतीय साहित्य से हमें संस्कृति स्वरूप के भौगोलिक प्रसार के प्रमाण भी मिलते हैं। ऋग वैदिक काल का भौगोलिक केन्द्र बिंदु सप्तसिंधु (सिंधु तथा इसकी सहायक नदियों की भूमि) तथा भारत-गांगेय विभाजन था। उत्तर वैदिक काल में दोआब ने यह स्थान ले लिया तथा बुद्ध के युग में मध्य गांगेय घाटी (कौशल एवं मगध) को यह गौरव प्राप्त रहा यहां यह कह देना उपयुक्त होगा कि भौतिक संस्कृति के विकास के साथ ही भौगोलिक विस्तार के चरणों का विकास होता रहा। राज्य सीमा के अर्थों में राष्ट्र शब्द का प्रयोग उत्तर वैदिक काल में आरंभ हुआ और इसी काल में कुरू और पांचाल जैसे क्षेत्रों में छोटे-छोटे राजवंशों एवं राज्यों का उदय हुआ। बुद्ध के युग में (छठवीं शती ईसा पूर्व) सोलह महाजनपदों (बड़े क्षेत्रीय राज्य) का उदय हुआ। यहां रुचिकर तथ्य यह है कि उत्तर पश्चिम में गांधार, मालवा में अवंती तथा दक्कन में अस्माक को छोड़कर अधिकतर **महाजनपद** ऊपरी एवं मध्य गांगेय घाटी में स्थित थे। कलिंग (प्राचीन तटवर्ती उड़ीसा) आंध्र, वंग (प्राचीन बंगाल) राजस्थान एवं गुजरात जैसे क्षेत्रों को इस युग पर प्रकाश डालने वाले साहित्य में स्थान नहीं मिला जिसका अर्थ यह है कि इन राज्यों का तब तक ऐतिहासिक रंगमंच पर प्रादुर्भाव नहीं हुआ था।

विंध्याचल के दक्षिण के राज्यों, जैसे कलिंग, का उल्लेख सर्वप्रथम पाणिनि ने पांचवीं शती ईसा पूर्व में किया सुदूर दक्षिण में तमिल भू-भाग का ऐतिहासिक काल में प्रवेश तक नहीं हुआ था। अत: विभिन्न क्षेत्रों का उदय और गठन एक दीर्घकालीन प्रक्रिया थी। अत: आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि विभिन्न क्षेत्रों की तकनीकी एवं सामाजिक-आर्थिक विकास का यह अन्तर बाद में पनपने वाली सांस्कृतिक विभिन्नता के मूल में रहा।

बोध प्रश्न 1

1 निम्नलिखित कथनों में से कौन सा सही (✓) है और कौन सा गलत (×) है ?

i) क्षेत्रों के असमान विकास की व्याख्या ऐतिहासिक पारिस्थितियों के आधार पर नहीं की जा सकती। ( )

ii) पूर्व विकसित क्षेत्रों में सांस्कृतिक विकासों ने पृथक क्षेत्रों पर प्रभाव छोड़ा। ( )

iii) क्षेत्रों के अभ्युदय की प्रक्रिया हर स्थान पर समान रूपी थी। ( )

iv) विभिन्न संस्कृतियों की पहचान उनके विशिष्ट मृत्भाण्ड से होती है। ( )

v) क्षेत्रों की पहचान करने में साहित्य का कोई उपयोग नहीं है। ( )

2 लगभग पाँच पंक्तियों में विभिन्न मृत्भाण्ड कलाएँ और उनसे संबद्ध कालों का विवेचन कीजिए।

....

....

....

....

....

2.3 भारतीय इतिहास में क्षेत्रों की महत्ता

सभी क्षेत्रों में गांव ही बुनियादी सामाजिक संगठन के इकाई रहे हैं और अपने निवासियों तथा शहरी जनता के जीवन यापन तथा राज्य की शक्ति का आधार रहे हैं इनमें से कुछ क्षेत्रों में जनसंख्या का घनत्व, ग्रामीण बस्तियाँ एवं नागरिक केन्द्र अपेक्षाकृत अधिक थे तथा शक्तिशाली विस्तारवादी राज्यों का इन क्षेत्रों में उदय हुआ। इन क्षेत्रों में नव पाषाण युग-ताम्र पाषाण युग से लगातार आबादियाँ तथा बस्तियां होने का प्रमाण मिलता है। यह विशेषता अन्य क्षेत्रों में दिखायी नहीं देती। क्षेत्रों के बीच के अन्तर की व्याख्या निम्न तथ्यों के आधार पर की जा सकती है:

- भूगोल,
- भौतिक संस्कृति के प्रसार का तरीका एवं काल, तथा
- ऐतिहासिक शक्तियों का विन्यास जैसे जनसंख्या, तकनीकी, सामाजिक संगठन, सिंचाई आदि इन तमाम कारणों का संयोग क्षेत्रों की अलग पहचान बनाने में सहायक हुआ।

क्षेत्रों के पृथक एवं मजबूत व्यक्तित्व तथा क्षेत्रीय शक्तियों की असमानता के कारण भारतीय उपमहाद्वीप राजनैतिक एकता प्राप्त न कर सका। कुछ लोगों ने अपनी आंतरिक शक्ति के कारण अखिल भारतीय, अथवा कई क्षेत्रों की सबसे बड़ी शक्ति बनने के उद्देश्य से राज्य विस्तार का प्रयास किया किंतु इन प्रयासों को पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हुई। मौर्य, तुगलक, मुगल तथा ब्रिटिश साम्राज्यों को राजनैतिक एकीकरण में आंशिक सफलता मिली फिर भी इनमें से कोई भी सभी भौगोलिक इकाइयों और संस्कृतियों में राजनैतिक एकता नहीं ला सका, यद्यपि ब्रिटिश बहुत हद तक इसमें सफल रहे थे। मध्य भारत, या मोटे तौर पर मध्यवर्ती क्षेत्र तथा भारतीय प्रायद्वीप का दूरवर्ती सदैव ही मजबूत विस्तार वादी अखिल भारतीय शक्ति के दायरे से बाहर रहा। जैसा कि इकाई 1 में संकेत दिया गया था, विंध्याचल उत्तरी भारत तथा दक्षिण प्रायद्वीप के इतिहासों को पृथक करने में बहुत कुछ सफल रहा। इसी प्रकार अरावली पहाड़ियाँ कैम्बे खाड़ी के मुख से शुरू होकर दिल्ली तक एक सीमान्ती रेखा तैयार करती हैं। वास्तव में यह बहुत प्रभावी सीमा रही है। तथापि सिन्धु का निचला थाला और गुजरात काफी लम्बे समय तक ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक केन्द्र बने रहे। इस प्रकार जहाँ एक ओर बड़े पैमाने पर केन्द्रीयकृत राज्य लम्बे समय तक बने न रह सके वहीं दूसरी ओर मगध, कौशल अवन्ती आंध्र, कलिंग, महाराष्ट्र, चेर, पाण्ड्य, चोल आदि जैसे प्राचीन राज्य किसी न किसी वंश के अंतर्गत बने रहे। उनके इस दीर्घकालीन स्थायित्व का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि इस प्राकृतिक क्षेत्र में राजनैतिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का केन्द्र बने रहे।

2.3.1 चक्रवर्ती संकल्पना

चक्रवर्ती (विश्व सम्राट) की संकल्पना जो कि प्राचीन भारतीय राजनैतिक विचारों का आदर्श थी इस विषय पर प्रकाश डालती है। आदर्श चक्रवर्ती के लिए विश्व विजेता होना तथा सम्पूर्ण

विश्व पर प्रभुत्व स्थापित करना आवश्यक था। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' के अनुसार हिमालय से समुद्र तट का क्षेत्र चक्रवर्ती सम्राट का क्षेत्र था। रुचिकर तथ्य यह है कि उक्त क्षेत्र उतना ही है जितना भारतीय उपमहाद्वीप है। बाद की कई कृतियों में इस आदर्श को बार-बार दोहराया गया है। जो राजा विश्व-सम्राट का स्तर प्राप्त करना चाहता था उसे अश्वमेघ यज्ञ करना होता था। प्राचीन भारतीय राजनैतिक विचारों में चक्रवर्ती की संकल्पना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इस प्रकार राजा की परिकल्पना सदैव विश्व प्रभुत्व से संबद्ध थी। लेकिन न तो कौटिल्य और न ही उसके उत्तराधिकारी इस बात की व्याख्या करते हैं कि सम्पूर्ण भारतीय साम्राज्य का प्रशासन किस रूप में होना चाहिए। संभावना इस बात की है कि चक्रवर्ती आदर्श का अर्थ विरोधियों को वशीकृत करना, उनकी सीमाओं में अपने अधिकारों का विस्तार करना और इस प्रकार साम्राज्य को विस्तृत बनाना था। इसका अर्थ यह नहीं है कि वशीकृत राज्य हमेशा के लिए एक ही प्रशासन प्रणाली का अंग बन जाते थे अथवा उन पर कठोर नियन्त्रण रखा जाता था। दूसरे शब्दों में, चक्रवर्ती का अर्थ श्रेष्ठ राजनैतिक शक्ति प्रदर्शन था और प्रशासन प्रबन्ध और संगठन जैसे पक्षों से इसका कोई मतलब नहीं था।

उक्त आदर्श की इस प्रकार की सीमाओं के बावजूद महत्वपूर्ण बात यह है कि प्राकृतिक क्षेत्रों की मज़बूती और शक्तिशाली क्षेत्रवाद ने इस संकल्पना को साकार नहीं होने दिया। भारतीय उपमहाद्वीप को राजनैतिक रूप में एकीकृत करने के प्रयास यद्यपि अधिक सफल नहीं हुए लेकिन यह इच्छा लगातार बनी रही। इस तथ्य के बारे में हमें पूर्व ऐतिहासिक युग के शिलालेखों से संकेत मिलता है कि छोटे-मोटे शासक भी अश्वमेघ यज्ञ किया करते थे जिससे कि वे अपनी शक्ति और संप्रभुता तथा राज्य के प्रति अपने लम्बे चौड़े दावों का प्रमाण प्रस्तुत कर सकें। वास्तव में यह एक स्पष्ट उदाहरण है जो कि वास्तविकता और आदर्श के अन्तर पर प्रकाश डालता है और हमारे पूरे इतिहास में पृथक प्राकृतिक क्षेत्रों के बड़े पैमाने पर विद्यमान होने की ओर संकेत करता है।

2.4 क्षेत्रों की श्रेणीबद्धता

"देश" शब्द की भांति "क्षेत्र" शब्द भी काफी विस्तृत अर्थ रखता है। आज के संदर्भ में इसका अर्थ स्पष्ट करना आवश्यक है। भूगोलशास्त्रियों तथा समाजशास्त्रियों ने अपने अनुसंधान की आवश्यकताओं के अनुरूप क्षेत्रों को भिन्न रूपों में रेखांकित किया है। फलत: क्षेत्रों के वर्गीकरण में "भाषायी क्षेत्र", "जातीय क्षेत्र", "भौतिक क्षेत्र", "प्राकृतिक क्षेत्र", "सांस्कृतिक क्षेत्र" आदि का उल्लेख मिलता है। यद्यपि ये क्षेत्रीय सीमाएँ लगभग समान प्रतीत होती हैं तथापि आवश्यक रूप से हमेशा ऐसा नहीं होता। भौतिक एवं प्राकृतिक क्षेत्रों की सीमाएं अभिसरित प्रतीत होती हैं। प्राकृतिक क्षेत्र अपनी विशिष्ट भाषायी, जातीय, पारिवारिक बंधुत्व संगठन तथा ऐतिहासिक परंपराओं के साथ स्वतंत्र संस्कृति क्षेत्र थे। तथापि आवश्यक नहीं है कि दो पड़ोसी क्षेत्र समरूप हों। जैसा कि हमने ऊपर पढ़ा है, भौगोलिक रूप से निकटवर्ती क्षेत्रों में भी सम्पूर्ण इतिहास के दौरान विपरीत सांस्कृतिक रुझान मौजूद थे। देश के ऐतिहासिक विकास के प्रतिरूप तथा ऐतिहासिक चरण की ओर संक्रमण में क्षेत्रीय असमानता क्षेत्रों के बीच श्रेणीबद्धता के अस्तित्व की ओर संकेत करती है। इस श्रेणीबद्धता की समझ के आधार पर क्षेत्रों की अंतरीय विशिष्टता तथा उनके विभिन्न कालों में गठन को समझा जा सकता है।

2.4.1 बुनियादी भौगोलिक प्रभाव

"भारतीय ऐतिहासिक भूगोल की बुनियादी संरचना रेखा" अथवा भारतीय इतिहास को मुख्य भौगोलिक विशिष्टताओं जैसे नर्मदा-छोटा नागपुर रेखा अथवा कैम्बे की खाड़ी से मथुरा तक जाने वाली रेखा, अरावली द्वारा संरचित रेखा आदि ने उपमहाद्वीप में सांस्कृतिक प्रसार के प्रतिरूप को काफी प्रभावित किया, इनको निम्नलिखित रूप में चार बुनियादी भागों में विभाजित किया गया है:

- मध्य एवं पश्चिमी एशिया से प्रभाव ग्रहण करने वाले सिंधु के मैदान,
- गांगेय मैदान जो कि दिल्ली-मथुरा रेखा से आरंभ होते हैं तथा उत्तर-पश्चिम सीमाओं से आने वाले तमाम राजनैतिक एवं सांस्कृतिक प्रभावों को समाहित कर चुके हैं,
- केन्द्रीय भारतीय मध्य क्षेत्र जिनके गुजरात तथा उड़ीसा दो छोर हैं, तथा

भारत
संरचनात्मक रेखाचित्र
हिंदूकुश
सफ़ेद खोह
K2
नंगा पर्वत
लद्दाख
काश्मीर घाटी
PP.
ज़ान्सकर
कारकोरम कैलाश
बृहत् हिमालय
कामेट
गौरीशंकर
नंदा देवी
माउंट एवरेस्ट
कंचनजंघा
सीबी अंत:प्रवंशी
किर्थार
भारत-गांगेय मैदानी क्षेत्र
शिलांग पठार
पटकई
कैमूर पर्वत
राजमहल पर्वत
विंध्य
अराकान
पश्चिमी घाट
सूचकांक
नीलगिरि
पालघाट
मुख्यतः उत्तरी अरावली दृश्यांश
मुख्य तृतीय परत श्रृंखला की प्रवृत्ति
भारत गांगेय नदी क्षेत्र सीमा
बंगाल की खाड़ी - अरब सागर जलविभाजक क्षेत्र
शिवालिक पर्वत माला
नर्मदा-ताप्ती नदी
प्रायद्वीपीय खंड
प्रच्छन्न विस्तार
गोंडवाना नदी क्षेत्र
दक्कन लावा
PP
पीर पंजाल
SR
नमकक्षेत्र
200
0
200
400
Kms

मानचित्र 5.

● प्रायद्वीपीय भारत जो नर्मदा का दक्षिणी भाग है।

अरावली रेखा के उत्तर एवं पश्चिम में सामान्यत: सांस्कृतिक स्थिति भिन्न प्रतीत होती है। आरंभिक ऐतिहासिक दौर में केवल राजस्थान एवं गुजरात के कुछ क्षेत्र गांगेय घाटी के सांस्कृतिक विकास की मुख्य धारा से प्रभावित नज़र आते हैं।

पंजाब के संदर्भ में अन्तर अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट है। ऋग वैदिक काल के बाद पंजाब में विकास की दर धीमी थी। गुप्त काल तक इस क्षेत्र में गैर-राजतंत्रीय जनपदों का नियमित अस्तित्व स्वतंत्र विकास का द्योतक है। इससे क्षेत्र में अविकसित सम्पत्ति संबंध तथा असंतोष-जनक कृषि विकास की ओर भी संकेत मिलता है। पंजाब के मैदानों में भूमि अनुदान शिलालेखों की अनुपस्थिति, जो कि गुप्त काल तथा उत्तर गुप्त काल भारत में सामान्य बात थी, इस विश्वास को और भी बल प्रदान करती है। पंजाब के मैदानों में ब्राह्मणवाद ने कभी जड़ें नहीं पकड़ी थीं और न ही वर्ण व्यवस्था को पूर्ण रूप से स्वीकार किया गया था। ब्राह्मणों ने यदा कदा ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और क्षत्रिय वर्ण शीघ्र ही वर्ण व्यवस्था से लुप्त हो गया। खत्री जो कि स्वयं को क्षत्रिय बताते हैं अधिकतर वैश्यों के व्यवसाय से जुड़े हुए हैं।

इस प्रकार पंजाब गंगा घाटी के दृष्टिकोण से देर से हुए ऐतिहासिक परिवर्तन तथा क्षेत्रीय भिन्नता दोनों ही अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इसी प्रकार नर्मदा-छोटा नागपुर रेखा बुनियादी विभाजन रेखा है क्योंकि गुजरात, महाराष्ट्र एवं उड़ीसा को छोड़कर इस रेखा के दक्षिण के सभी सांस्कृतिक क्षेत्र आरंभिक काल में तमिल मैदानों से प्रभावित नज़र आते हैं। इन क्षेत्रों में भिन्न समुदाय-संगठन तथा जाति श्रेणियां मौजूद थी। महाराष्ट्र, जिसकी सीमा मालवा से मिलती है और चूंकि मालवा और दक्कन लावा क्षेत्र एक दूसरे से जुड़े हुए हैं तथा मालवा गंगा घाटी तथा दक्कन के बीच महत्वपूर्ण सेतु है, अत: यहां विकास प्रक्रिया भिन्न थी। यहां यह उल्लेख अनुचित न होगा कि दक्षिण की ओर जनसंख्या का आवागमन तथा सीमा विस्तार इसी रास्ते से हुआ।

2.4.2 केन्द्रीय क्षेत्र

भारतीय इतिहास में काफी पहले ही कुछ क्षेत्र शक्ति के स्थायी केन्द्र बन गए थे। इन क्षेत्रों में निरंतर शक्तिशाली राज्य बने रहे। इसके विपरीत कुछ क्षेत्र इतने शक्तिशाली नहीं थे। भूगोलशास्त्री एवं इतिहासकार इन्हें तीन वर्गों में विभाजित करते हैं: i) स्थायी केन्द्रीय क्षेत्र ii) अपेक्षाकृत अलग-थलग क्षेत्र तथा iii) अलग-थलग क्षेत्र। स्थायी केन्द्रीय क्षेत्र गंगा, गोदावरी, महानदी, कृष्णा तथा कावेरी जैसी मुख्य नदी घाटियों के क्षेत्र हैं और इन क्षेत्रों में मानवीय बस्तियां अधिकतर संख्या में पायी जाती रही हैं। संसाधनों की उपलब्धता तथा व्यापार एवं संचार के अभिसरण ने इन क्षेत्रों के महत्व को और भी बढ़ा दिया था। तर्कसंगत ही है कि ये क्षेत्र महत्वपूर्ण शक्ति केन्द्रों के रूप में उभरे। किंतु यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि भूगोल और संसाधन केवल संभावनाएं अथवा सीमाएं प्रस्तुत करते हैं। किसी का महत्वपूर्ण केन्द्र होना इस बात पर निर्भर करता है कि ऐतिहासिक कारण क्षेत्र पर किस प्रकार अभिसारित होते हैं। वारंगल के काकातीय राज्य एवं गुजरात के चालुक्य राज्य ऐसे ऐतिहासिक उदाहरण मौजूद हैं जोकि **केन्द्रीय क्षेत्रों** की परिधि से बाहर उदित हुए लेकिन ऐसे उदाहरण छिट-पुट ही हैं। मध्य भारत के अपेक्षाकृत अलग-थलग क्षेत्र, जैसे भीलों का देश, बस्तर एवं राजमहल की पहाड़ियां बस्तियों की संरचना, कृषिगत इतिहास, सामाजिक संगठन तथा राज्य प्रणाली की दृष्टि से केन्द्रीय क्षेत्रों से भिन्न थे। चूंकि क्षेत्रों का विकास ऐतिहासिक रूप में हुआ अत: तीनों प्रकार के क्षेत्रों में अन्तर सदैव एक ही जैसा नहीं था। एक बिन्दु पर एक श्रेणी का दूसरी श्रेणी में परिवर्तित होना संभव था।

2.4.3 समय एवं स्थान के संदर्भ में बस्तियों की संरचना

क्षेत्रों में बस्तियों की संरचना स्थिर नहीं रही। क्षेत्रों में गांव, खेड़े, नगर एवं शहर शामिल होते थे। मध्य गंगा में मैदानों एवं दक्कन जैसे कुछ क्षेत्रों में नगरों की संख्या अधिक थी। जैसे हम गुप्त काल की ओर बढ़ते जाते हैं शहरी केन्द्रों की संख्या कम होती जाती है। कृषि के विस्तार तथा नयी ग्रामीण बस्तियों के प्रसार के निरंतर प्रमाण मिलते हैं। कुछ स्थानों पर आदिवासियों के खेड़े खेतिहर गांव बन गए। आर्थिक गतिविधियों एवं सामाजिक वर्गीकरण के

स्तर पर ब्राह्मण एवं गैर-ब्राह्मण बस्तियों में अन्तर था। इस अन्तर का धीरे-धीरे उन क्षेत्रों में भी प्रसार हो गया जो आरंभिक चरणों में विकास की मुख्य धारा से पूर्णतया जुड़े हुए नहीं थे। इन क्षेत्रों में आदिवासी संस्कृति से अधिक जटिल सामाजिक संरचना की दिशा में परिवर्तन हुए। उदाहरण के लिए, इन क्षेत्रों में संगठित धर्म, राज्य एवं वर्ग समाज का आधार तैयार हुआ। इन परिवर्तनों का अर्थ इन क्षेत्रों में नई बस्तियों का विस्तार तथा जनसंख्या में वृद्धि था। भारतीय इतिहास में सदैव जनसंख्या में अधिक घनत्व वाले क्षेत्र अग्रणी भूमिका निभाते रहे हैं। गंगा घाटी, तमिल मैदान एवं पूर्वी तट सभी ऐसे क्षेत्र थे जहां जनसंख्या का घनत्व अधिक था। संसाधन युक्त तथा अन्य सुविधाओं वाले क्षेत्र स्वाभाविक रूप से अधिक घनी जनसंख्या वाले क्षेत्र थे तथा निरंतर मानवीय संसाधनों का प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होना राज्य की सैन्य शक्ति को बल प्रदान करता था।

बोध प्रश्न 2

1 भारतीय उपमहाद्वीप के राजनैतिक एकीकरण को बाधित करने वाले कारणों की चर्चा दस पंक्तियों में करें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....

2 चक्रवर्ती संकल्पना से आप क्या समझते हैं ? पांच पंक्तियों में लिखें।

....
....
....
....
....

3 रिक्त स्थानों की पूर्ति करें:

i) प्राकृतिक क्षेत्र . . . (स्वतंत्र /आश्रित) सांस्कृति क्षेत्र होते हैं।

ii) इतिहास में भिन्न संस्कृतियां . . . (नहीं थी /सहअस्तित्व) में विद्यमान थी।

iii) पंजाब में सांस्कृतिक विकास गांगेय घाटी से . . . (भिन्न /मिलता जुलता) था।

iv) भारतीय . . . (अंतरिक्ष विज्ञान / इतिहास) में . . . (अधिक /कम) घनत्व वाले क्षेत्रों की अग्रणी भूमिका रही है।

2.5 प्राचीन भारत में कुछ क्षेत्रों का गठन

गंगा-यमुना दोआब, मध्य गंगा घाटी, मालवा, उत्तरी दक्कन, आंध्र, कलिंग (तटवर्ती उड़ीसा) एवं तमिल मैदान ऐसे मुख्य स्थायी केन्द्रीय क्षेत्र हैं जो शक्ति केन्द्र के रूप में काफी पहले उभर चुके थे। लेकिन कुछ ऐसे छोटे क्षेत्र भी हैं (जिन्हें उप-क्षेत्र कहा जा सकता है) जिन्होंने अपनी पहचान बनाए रखी। कोकान, [illegible]नाडा और छत्तीसगढ़ इसी श्रेणी में आते हैं। कुछ क्षेत्र जैसे कृष्णा और तुंगभद्रा के बीच वेंगी, ऐसे क्षेत्र थे जिनके कृषि संसाधनों की प्रचुरता के कारण इन पर प्रभुता स्थापित करने के लिए निरंतर युद्ध हुए। इन क्षेत्रों पर प्रभुता स्थापित होने से

आसपास के क्षेत्र शक्तिशाली बन सकते थे। मुख्य केन्द्रीय क्षेत्र नदी की मिट्टी वाली उपजाऊ भूमि की विस्तृत उपलब्धता के कारण मुख्य कृषि क्षेत्र भी रहे हैं। अब कुछ उदाहरणों के आधार पर क्षेत्रों के गठन के प्रतिरूपों एवं कारणों पर दृष्टिपात करेंगे।

2.5.1 गांगेय थाला

अधिक उच्च कृषि उत्पादकता तथा जनसंख्या के अधिक घनत्व के कारण गंगा के मैदान भारतीय उपमहाद्वीप में प्रभुत्वशाली रहे हैं। इसके समरूप किसी भी अन्य क्षेत्र का शक्ति आधार नहीं रहा है। किन्तु यह पूरा मैदान जैसा कि इकाई 1 में उल्लेख किया गया है, एक समरूपी भौगोलिक क्षेत्र नहीं है। हम पढ़ चुके हैं कि मध्य गंगा के मैदान कई कारणों से ऊपरी एवं निचले गंगा के मैदानों की अपेक्षा अधिक सफल क्षेत्र रहा और मौर्य काल तक आते-आते इस क्षेत्र ने पूरे उपमहाद्वीप पर अपना प्रभुत्व जमा लिया। ऋग वैदिक काल के दौरान भारत गांगेय विभाजन इसका केन्द्र था। उत्तर वैदिक काल में 2000 ईसा पूर्व के आसपास भौगोलिक केन्द्र गंगा-जमुना दोआब बन गया। इसके साथ ही वैदिक कालीन बस्तियाँ पूर्व की ओर फैलने लगीं। लेकिन इसके अधिक महत्वपूर्ण विकास का दौर बैलों वाले हल के प्रयोग द्वारा स्थायी खेतिहर जीवन के आरंभ से होता है जिसके परिणामस्वरूप राज्य सीमाएं एवं राष्ट्र एवं जनपदों का उदय हुआ। कुरू और पांचाल इसके अच्छे उदाहरण हैं। छटी शती ईसा पूर्व से जनपदों के उदय की प्रक्रिया तेज हो गयी थी। इसी समय सर्वप्रथम महाजनपदों का उदय होता है जिसमें छोटे जनपद समाहित हो जाते हैं। समकालीन साहित्य में महाजनपदों की संख्या सोलह बतायी गयी है।

रहने योग्य स्थान बनाने के लिए घने जंगलों को आग लगाकर अथवा धातु के औजारों से साफ किया गया। धान की उपज वाली मध्य गंगा घाटी में लोहे के हल, द्वारा गहरी जुताई के कारण अन्न का उत्पादन बढ़ गया। बढ़ती हुई जनसंख्या ने अधिक उपज की आवश्यकता को जन्म दिया। विशेषकर इस अधिक जनसंख्या वाले समाज का एक वर्ग जिसमें शासक, अधिकारी,पुरोहित, संन्यासी आदि शामिल थे किसी प्रकार की प्रत्यक्ष उत्पादन प्रक्रिया में भाग नहीं लेते थे। स्थानीय उपभोगी आवश्यकता से अधिक इस कृषि उत्पादन से नगरों के उदय एवं विकास को बढ़ावा मिला। इस काल के मिट्टी के बर्तन उत्तरी काली पालिश वाले (Northern Black Polish Ware) बर्तन हैं जो 500 ईसा पूर्व के लगभग के हैं। इसी समय सर्वप्रथम सिक्कों का चलन आरंभ होता प्रतीत होता है। बढ़ते हुए व्यापार एवं वाणिज्य के कारण सिक्कों की आवश्यकता महसूस की गयी। उत्तरी काली पालिश वाले बर्तनों का कौशल एवं मगध से उत्तर-पश्चिम में तक्षशिला, पश्चिमी मालवा में उज्जैन तथा तटवर्ती आंध्र में उमरावती जैसे सुदूर नगरों तक फैल जाना संगठित वाणिज्य एवं संचार का द्योतक है जिसने इन सुदूर नगरों के बीच संबंध जोड़ दिया। इस विकास के साथ ही भारी सामाजिक परिवर्तन हुए। बस्तियों में स्थायी जीवन के जड़ पकड़ने के कारण वन विचरण तथा आदिवासी जीवन पद्धति धीरे-धीरे कम होने लगी। उत्तर वैदिक काल की जनता मूल निवासियों के काफी नजदीकी सम्पर्क में आयी। उत्तर वैदिक साहित्य में इस संपर्क तथा आपसी मेल-जोल के प्रमाण मिलते हैं। इन विकासों की पृष्ठभूमि में सर्वप्रथम कुछ हद तक श्रम विभाजन और तदोपरांत व्यवसायों के विस्तार एवं उनमें विशिष्ट दक्षता प्राप्त करने की नयी परिस्थिति ने चार वर्णों की जाति व्यवस्था के लिए उपयुक्त माहौल तैयार कर दिया।

जनपदों एवं महाजनपदों के अभ्युदय (विस्तृत जानकारी के लिए खंड 4 देखें) के साथ ही काफी बड़े पैमाने पर सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिवर्तन प्रकट हुए। प्रत्येक जनपद में आम तौर पर ग्राम, निगम (बड़ी बस्तियाँ जहां व्यापार विनिमय होता था) एवं नगर हुआ करते थे। जंगल (वन) भी जनपदों का एक हिस्सा होते थे। जनपद मूलत: सामाजिक-सांस्कृतिक क्षेत्र होते थे। इन्होंने राज्य के गठन का आधार तैयार किया, जिसे 6वीं शती ईसा पूर्व में मूर्तरूप प्राप्त हुआ। महाजनपदों के उदय के साथ महानगरों और तदानुरूप धनी एवं निर्धन सामाजिक वर्ग का उदय हुआ। यह पूरी प्रक्रिया मध्य गंगाघाटी में अपने चर्मोत्कर्ष पर मौर्य काल में पहुंची। इस प्रकार समाज में सत्ता का जन्म हुआ। सत्ताधारी वर्ग शक्तिशाली धार्मिक व्यवस्थाओं जैसे ब्राह्मणवाद, बुद्धमत, जैनमत, आदि का प्रयोग करके नयी सामाजिक व्यवस्था तथा स्वयं को स्थायित्व प्रदान करने का भरपूर प्रयास कर रहा था। इन विकासों की पृष्ठभूमि में उत्तरी गांगेय भारत पूरी तरह इतिहास का पात्र बन जाता है।

2.5.2 तमिल देश

तमिल कविताओं के संग्रह से, जिन्हें उनके समग्र रूप में संगम साहित्य के नाम से जाना जाता है, प्राचीन तमिल देश (तमिलाकम्) में पूर्व आदिवासी वन-विचरण चरण से मिलता है इन कविताओं से हमें एक ही समय में भिन्न पर्यावरणीय क्षेत्रों के अस्तित्व तथा भिन्न किन्तु अंत:संबंधित जीवन शैली जैसे भोज्य पदार्थ एकत्रण, प्रारंभिक कृषि, मछली पकड़ना, पशुपालन से लेकर बड़े पैमाने पर खेती के सहअस्तित्व की ओर संकेत मिलता है। कावेरी, पेरियार एवं पैगाई की उपजाऊ नदी घाटियों (मारूटम क्षेत्र) में कृषि उत्पादन भारी मात्रा में होता था तथा यही वे क्षेत्र थे जो कि तीन प्राचीन अग्रणी वंशों, चोल, चेर, एवं पांड्य के प्रभाव क्षेत्र थे। यद्यपि ईसा पूर्व शताब्दियों में लड़ाकू सरदारों, पशु प्राप्ति के लिए आक्रमण, युद्ध एवं लूट आदि का प्रभुत्व था लेकिन धीरे-धीरे लोग किसानों के रूप में बस्तियों में वास करने लगे और एक श्रेणीबद्ध समाज का उदय हुआ जिसमें कृषक, भाट, योद्धा एवं कबायली सरदार मुख्य श्रेणियाँ थीं। युद्ध के रिवाज ने योद्धा वर्ग को अपने मुखिया के आधीन प्रभुत्वमान बना दिया। छापों से बचाव एवं छुटकारा पाने की दृष्टि से किसान वर्ग एक ऐसी व्यवस्था में समाहित होने के लिए तैयार था जिसमें अविकसित राज्य व्यवस्था अस्तित्व में आ चुकी थी। राज्य के गठन की प्रक्रिया तेज़ होने के निम्नलिखित कारण थे:

- आरंभिक ईसवी शताब्दियों में रोम के साथ व्यापार,
- नगरों का उदय, तथा
- ब्राह्मणों के साथ उत्तरी सभ्यता (आर्य) की संस्कृति का आगमन।

ईसवी युग की आरंभिक शताब्दियों में रोम के साथ व्यापार का महत्व बढ़ रहा था। साथ ही तमिलाकम् में विभिन्न क्षेत्रों के बीच आंतरिक तथा तमिलाकम् एवं दक्कन के बीच व्यापार को काफी महत्व प्राप्त हो चुका था। इस आरंभिक काल में केरल तमिलाकम् का अभिन्न हिस्सा था। पहाड़ियों एवं सीमांती कृषि वाले क्षेत्रों के छोटे-छोटे असंख्य कबीले तीन राज्यों की परिधि में लाए गए। सामाजिक रूप से यह प्रक्रिया जाति व्यवस्था के गठन में परिलक्षित होती है। इस व्यवस्था के अंतर्गत किसान शूद्र के स्तर पर पहुंचा दिए गए। इस प्रकार आरंभिक तमिलनाडु में राज्य के उदय का आधार तैयार किया जा चुका था।

2.5.3 दक्कन: आंध्र एवं महाराष्ट्र

आंध्र एवं उत्तरी दक्कन में लोहे का इस्तेमाल करने वाले उत्तर-पाषाण युगीन समुदायों ने, जोकि नवपाषाण युगीन तथा मध्यपाषाण युगीन संस्कृतियों का अनुसरण कर रहे थे स्थायी कृषि के लिए आधार तैयार किया और इन क्षेत्रों के परिवर्तन का पथ प्रशस्त किया। पांचवीं से तीसरी शती ईसा के पूर्व के बीच आंध्र में समुद्र तटवर्ती भूमि पर अधिक उपज वाली धान की फसलें उगाना जारी रहा। उत्तर पाषाणकालीन शवाधानो दफनाने की परम्परा से निम्नलिखित प्रमाण मिलते हैं:

- शिल्पकला में अल्पविकसित विशेषज्ञता,
- अविकसित विनिमय व्यवस्था जिसके अंतर्गत खनिज संसाधन उत्तर दक्कन भेजे जाते थे, तथा
- स्तर का अंतर।

यहां काले एवं लाल बर्तनों के स्थल प्रचूर मात्रा में मिले जिनका अर्थ है कि यहां संभवत: जनसंख्या में वृद्धि हुई होगी। तीसरी शती ईसा पूर्व से उत्तर पाषाणकाल में परिवर्तन विस्तृत रूप में समता आधारित समाज में परिवर्तन की शुरुआत थी, फलत: वर्गीकृत समाज की नीव पड़ी। दूसरी शती ईसा पूर्व के आरंभ से धातु के सिक्के का चलन रोम से व्यापार तथा शहरीकरण के प्रमाण मिलते हैं। शिलालेखों तथा पुरातत्वशास्त्र से प्राप्त जानकारी के आधार पर आंध्र और महाराष्ट्र में काफी संख्या में नगरों के अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं। इस समय तक बुद्धमत दक्कन में फैल चुका था और बौद्ध केन्द्र एवं मठ स्थापित हो चुके थे। साथ ही मौर्य साम्राज्य के ऐतिहासिक विस्तार के रूप में एक अन्य स्थिति उत्पन्न हुई जिसने इन विकासों की प्रक्रिया को और तेज कर दिया।

मौर्य प्रसार के साथ उत्तर पाषाण युगीन संस्कृति ने आरंभिक ऐतिहासिक बस्तियों का पथ प्रशस्त किया दक्कन में कई शहरी केन्द्र एवं मठ जिनमें से कई केन्द्रीय स्थल बन गए इसी काल में अस्तित्व में आए। यही अंतर्संबंध दक्कन में स्थानीय बस्तियों के उदय में सहायक रहे। यह स्थानीय बस्तियाँ उत्तरी भारतीय जनपदों के समरूप समझी जा सकती हैं। सतवाहनों

के युग तक स्थानीय बस्तियों ने दक्कन में पूर्व ऐतिहासिक राज्य गठन का आधार तैयार किया। दूसरी शती ईसा पूर्व के बाद से धीरे-धीरे खेतिहर बस्तियों के विस्तार एवं नए समुदायों के समाहित होने की प्रक्रिया दिखायी देती है। सामाजिक मेल-जोल का पथ सर्वप्रथम बुद्धमत एवं मठों ने तदोपरांत ब्राह्मणों एवं ब्राह्मणवाद ने प्रशस्त किया। निवासी समुदायों के बीच त्रिकोणी संबंध प्रतीत होता है। यह तीन पक्ष निवासी समुदाय, राज्य, मठ अथवा /एवं ब्राह्मण थे। यह ऐतिहासिक प्रक्रिया तटवर्ती आंध्र में इक्शवाकुवंश, कर्नाटक में कदम्ब तथा महाराष्ट्र में वकातका के अधीन और तेज हुई। प्रथम सहस्त्राब्दि ईसवी के मध्य तक उक्त दो क्षेत्र अपनी अलग पहचान बना चुके थे।

2.5.4 कलिंग एवं प्राचीन उड़ीसा

दक्कन की भांति ही उड़ीसा में भी तीसरी एवं चौथी शती ईसा पूर्व के दौरान महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। 300 ईसा पूर्व तथा चौथी शताब्दी ईसवी के बीच उड़ीसा का इतिहास आदिवासी समाज के आंतरिक परिवर्तन का इतिहास है। यह परिवर्तन आंशिक रूप से स्वतंत्र था तथा कुछ अंश तक गंगा के मैदानों की सुसंस्कृत सभ्यता से प्रभावित था जिसका आरंभ नंद एवं मौर्य काल के समय से इंगित किया जा सकता है। इसके उपरांत चौथी शताब्दी ईसवी से नवीं शताब्दी के बीच इस क्षेत्र में विभिन्न स्थानों पर कई उप क्षेत्रीय राज्यों का उदय हुआ। दसवीं शताब्दी तक यह विकास प्रक्रिया स्पष्ट रूप ले चुकी थी। तथापि यह प्रक्रिया प्रत्येक स्थान पर समरूपी नहीं थी।

डेल्टा तट के तटवर्ती क्षेत्रों में क्षेत्र के अंदर की जंगली भूमि और ढलानों की अपेक्षा, जो कि निकटवर्ती छत्तीसगढ़ एवं बस्तर उपक्षेत्रों से काफी मिलते-जुलते हैं, ऐतिहासिक चरण की दिशा में परिवर्तन जल्दी हुए। केन्द्रीय एवं पश्चिमी उड़ीसा में धीमा और असमान परिवर्तन देखने को मिलता है। बड़ी संख्या में यहां आदिवासियों का बसना तथा भू-आवृति के कारण यहां गंगा प्रदेश की सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन प्रक्रिया की पुनरावृत्ति नहीं हो सकी, उड़ीसा में वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत जातिगत समाज देर से उभरा और जब उभरा भी तो काफी मूल अंतरों के साथ उभरा। सामाजिक संरचना की दृष्टि से उड़ीसा क्षेत्रीय भिन्नता का अच्छा उदाहरण है।

2.5.5 उत्तर-पश्चिम

उत्तर-पश्चिम में सिंध और बलूचिस्तान के विषय में अभी बहुत कम चर्चा हुई है। इसका कारण इन क्षेत्रों की सीमांती स्थिति है। यह क्षेत्र आरंभिक ऐतिहासिक दौर में अधिकतर विशाल भारतीय रेगिस्तान में हो रहे सांस्कृतिक विकासों की मुख्य धारा से कटे रहे। इस तथ्य पर चर्चा की आवश्यकता नहीं कि यह क्षेत्र सांस्कृतिक रूप से विकासरहित था। जिस काल की हम चर्चा कर रहे हैं उस काल में इन क्षेत्रों में जो भी महत्वपूर्ण घटनाएं हुई हैं वह अधिकतर मध्य ऐशिया, अफगानिस्तान अथवा ईरान के संदर्भ से हुई हैं केवल कुशान काल के बाद से ही इन क्षेत्रों में एक अंतर्क्षेत्रीय राजनीतिक व्यवस्था स्थापित हुई जिसमें उत्तरी भारत का भी एक बड़ा भाग शामिल था। उत्तर-पश्चिम में गांधार क्षेत्र इसका अपवाद था। छठवीं शताब्दि ईसा पूर्व में ही गांधार 16 महा-जनपदों की सूची में था। मगध के राजा बिम्बसार का गांधार का राजा के साथ राजनैतिक संबंध था। गांधार की राजधानी तक्षशिला शिक्षा एवं व्यापार का केन्द्र थी। गांधार का विस्तृत आर्थिक आधार था। मथुरा, मध्य भारत तथा रोम के साथ गांधार के व्यापार के प्रमाण हैं। अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण गांधार विभिन्न लोगों एवं संस्कृतियों के मिलाप का केन्द्रीय स्थान था। छठवीं शताब्दी ईसा पूर्व के अंतिम 25 वर्षों में यह क्षेत्र राजनीतिक रूप से ईरानी (आर्केमिनिड) साम्राज्य का हिस्सा था। 500 शताब्दी ईसा पूर्व से 500 शताब्दी ईसवी तक लगभग 1000 वर्षों तक तक्षशिला में निरंतर शहरी जीवन के प्रमाण मिलते हैं। किन्तु यह शहरी जीवन अपने चर्मोत्कर्ष पर दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व से लेकर दूसरी शताब्दी ईसवी तक रहा। इसी काल में सुविख्यात गांधार कला शैली विकसित हुई। भाव की दृष्टि से सामान्य यह कला यूनानी बौद्ध शैली के रूप में व्याख्यायित की जाती है क्योंकि यह गांधार·शैली — यूनानी कला तथा बुद्धमत के सामंजस्य का परिणाम मानी जाती है। लेकिन अब निरंतर यह स्वीकार केया जा रहा है कि इस शैली पर बैक्ट्रिया का प्रभाव भी था। अत: गांधार शैली के विकास

पर बैक्ट्रिया विचार पद्धति के प्रभाव को भी नहीं नकारा जा सकता। यहां जो कहने का प्रयास किया जा रहा है वह निम्नलिखित है:

1) प्रथमत: उत्तर पश्चिम में सिंध एवं बलूचिस्तान की तुलना में गांधार एक भिन्न विकास प्रक्रिया दर्शाता है, तथा

2) आरंभिक ईसवी शताब्दियों में इस क्षेत्र की विशिष्ट पहचान अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण विभिन्न बाह्य प्रभावों के आधार पर बनीं।

बोध प्रश्न 3

1 निम्नलिखित में से कौन सा वक्तव्य सही (✓) है और कौन-सा गलत (×) है ?

i) गांगेय थाला एक समरूपी भौगोलिक आधार है। ( )

ii) मुद्रा के चलन की आवश्यकता व्यापार एवं वाणिज्य के कारण प्रस्तुत हुई। ( )

iii) संगम साहित्य प्राचीन तमिल देश में राज्य के गठन पर कोई प्रकाश नहीं डालता है। ( )

iv) गांधार क्षेत्र का विकास भिन्न सांस्कृतिक प्रभावों से प्रेरित था। ( )

2 रिक्त स्थानों की पूर्ति करें:

i) . . . (जनपदों / महाजनपदों) के उदय के कारण महानगरों का उदय संभव हो सका।

ii) आंध्र तटवर्ती क्षेत्रों में . . . (पांचवीं, तीसरी, प्रथम, दूसरी) शताब्दी ईसा पूर्व के दौरान अधिक उत्पादक . . . (गेहूं /धान) उगाना प्रचलित था।

iii) उड़ीसा में . . . (गैर आदिवासी /आदिवासी) परिस्थिति के कारण . . . (उपमहाद्वीप /क्षेत्र) में परिवर्तन की प्रक्रिया में बाधा पड़ी।

2.6 सारांश

हमारे इतिहास में क्षेत्र एवं क्षेत्रीयता की समस्या के सर्वेक्षण तथा क्षेत्रों के गठन की प्रक्रिया को रेखांकित करने वाले उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि क्षेत्रों का सामाजिक सांस्कृतिक अंतर ऐतिहासिक रूप से काफी पुराना अंतर है। स्वाभाविक भौतिक क्षेत्रों का ऐतिहासिक /सांस्कृतिक क्षेत्रों के रूप में उदय भारतीय इतिहास के आरंभिक दौर में भी देखा जा सकता है। बाद के दौर में इन क्षेत्रों ने अपनी विशिष्ट सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान तैयार की और पृथक सामाजिक राजनैतिक इकाई के रूप में उभरे। कुछ क्षेत्र, ऐतिहासिक शक्तियों के उनमें आरंभ में ही अभिसरित हो जाने के कारण अपेक्षाकृत जल्दी और तेजी से उभरे। अन्य क्षेत्रों के अंतर्गत विकास इन बुनियादी केन्द्रों के साथ सांस्कृतिक संपर्क तथा इस संस्कृति को समाहित करने के साथ हुआ। कुछ हद तक इससे भिन्न क्षेत्रों की विशिष्टताओं और उनमें भिन्नताओं को समझा जा सकता है। क्षेत्रीय विभिन्नताएं गुप्त एवं उत्तर गुप्त काल में भाषा, शिल्पकला, वास्तुकला एवं जाति व्यवस्था के माध्यम से अधिक स्पष्ट रूप में रेखांकित होती हैं। लगभग सभी क्षेत्रीय भाषाएं इसी काल में विकसित होती हैं। साथ ही प्रत्येक क्षेत्र में अपनी अलग जाति व्यवस्था भी विकसित हुई। यह सांस्कृतिक अंतर केवल भिन्न क्षेत्रों के बीच ही नहीं थे बल्कि एक ही क्षेत्र में भी भिन्नताएं देखी जा सकती हैं। यद्यपि क्षेत्र अपने आप में साधारणतया समरूपी इकाई थे लेकिन क्षेत्रों के अंतर्गत उपक्षेत्रों के अस्तित्व की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। हमने पहले भी देखा है कि गांगेय उत्तरी भारत किसी भी रूप में एक समरूपी क्षेत्र नहीं था। प्राचीन तमिलाकम् (तमिलनाडु) के अंतर्गत पर्यावरणीय विभिन्नताएँ भी ध्यान में रखी जानी चाहिएं। आंध्र, उड़ीसा, पंजाब और गुजरात के संदर्भ में भी यह तथ्य उतना ही सही जान पड़ता है। उपक्षेत्रों के अपने प्राचीन नाम भी थे। तथापि बदलते हुए राजनैतिक प्रतिरूपों और उपक्षेत्रों के एक दूसरे में समाहित हो जाने के कारण यह उपक्षेत्र बाद के समय में नये नाम ग्रहण करने लगे। निश्चित सीमाओं में एक इकाई के रूप में क्षेत्र ऐतिहासिक प्रक्रियाओं के आधार पर उभरते हैं, और भारतीय इतिहास की समझ के लिए क्षेत्रों की विशेषताओं और उनके गठन की प्रक्रियाओं को समझना आवश्यक है।

2.7 शब्दावली

साक्षर युग: इतिहास का वह काल जब समाज में साक्षरता और लिपि का ज्ञान था।

मृत्माण्ड: मिट्टी के बर्तन।

संगम साहित्य: तमिल क्षेत्र के लोगों का सबसे पुराना साहित्य। यह पहली से तीसरी ईसवी के बीच संकलित किया गया।

भाट: वह घुमक्कड़ समूह जो गीतों के रूप में प्रशस्तियाँ गाते थे।

केन्द्रीय क्षेत्र: वह क्षेत्र जो किसी बड़े क्षेत्र के विकास में केन्द्रीय बिन्दु की भूमिका निभाते हैं।

निवासी समुदाय: कबायली समुदाय के विपरीत एक स्थान पर रहकर कृषि तथा अन्य तरीकों से जीवनयापन करने वाले लोग।

2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 i) × ii) ✓, iii) × iv) ✓, v) ×

2 **संकेत:** गेरू – चित्रित मृत्माण्ड, चमकाए हुए चित्रित मृत्माण्ड, उनके काल का भी उल्लेख करें। देखें उपभाग 2.2.2

बोध प्रश्न 2

1 आप के उत्तर में शक्तिशाली क्षेत्रीय इकाइयों के विकास, इकाइयों की शक्ति एवं क्षेत्रीय शक्तियों का मजबूत पक्ष आदि सम्मिलित होना चाहिए, देखें भाग 2.3

2 देखें उपभाग 2.3.1

3 i) स्वतंत्र, ii) सहअस्तित्व, iii) भिन्न, iv) उच्च, इतिहास

बोध प्रश्न 3

1 i) x, ii) ✓, iii) ✓ iv) x, v) ✓

2 i) विकास, ii) महाजनपद, iii) फसल, पांचवीं-तीसरी शताब्दी ई. पू., iv) आदिवासी क्षेत्र।